भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के उत्प्रेरक तत्त्व-1885 तक

* डॉ. नवीन गिडियन ** डॉ. वन्दना गुप्ता

उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में भारत की गणना विश्व के उन देशों में होती थी जहाँ राष्ट्रीय जागरण की संभावनाएें प्रायः गौण समझी जाती थीं। भारत का विशाल जन–समुदाय लगभग सभी विषयों, जैसे भाषा, धर्म, जाति, राजनीति इत्यादि में विभाजित था। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि अंग्रेजों ने भारत पर आधिपत्य कायम करने में इन्हीं निर्णायक तत्वों की सहायता ली थी। उन्हें पूरा विश्वास था कि वे भारत पर शासन करने में तब तक सफल रह सकते हैं जब तक ये आपसी मतभेद कायम हैं। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि कुछ उपनिवेशवादी, अपनी परिभाषा के अनुसार भारत को एक राष्ट्र मानते ही नहीं थे। सर जॉन स्ट्रैची ने घोषणा की थी कि ''भारत के विषय में यह समझ लेना आवश्यक है कि न यह कोई देश है और न कभी था–यहां यूरोपीय धारणाओं के अनुकूल भौतिक, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक एकता है ही नहीं''।[1] सर जॉन सीले ने भी इसी प्रकार घोषणा की थी कि ''भारत कोई एक राजनीतिक नाम नहीं है, केवल एक भौगोलिक अभिव्यक्ति है, जैसे कि यूरोप या आफ्रीका। यह किसी देश के क्षेत्रफल या भाषा को संबोधित नहीं करता, वरन् यह कई राष्ट्रों और भाषाओं की ओर संकेत करता है''।[2] किन्तु उपरोक्त विद्वान यह नहीं समझ पाये कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में यूरोपीय परिभाषाओं को लागू नहीं किया जा सकता।

क्या भारतीय राष्ट्रवाद अंग्रेजों की देन ? कुछ साम्राज्यवादी समर्थकों ने जिनमें लोकतांत्रिक समाजवाद के प्रमुख स्तंभ रैमजे मेंकडोनल्ड भी शामिल हैं–यह कहा कि भारत का राष्ट्रीय आंदोलन मूलतः उन्हीं की देन है : ''भारतीय जनता का राजनीतिक मनोवृत्ति वाला हिस्सा बौद्धिक दृष्टि में हमारी संतान है। उन्होंने उन विचारों को ग्रहण किया जिन्हें खुद हमने उनके सामने रखा। भारत की वर्तमान बौद्धिक और नैतिक हलचल हमारे कार्य की निंदा नहीं वरन् प्रशंसा की बात है।'' भारतीय राष्ट्रीयता के जन्मदाता होने का दावा केवल अंग्रेजों की चालबाजी का जीवित उदाहरण है। इसी संदर्भ में अंग्रेजी साम्राज्यवाद के प्रबल समर्थकों का कथन उल्लेखनीय है– ''हमने भारत को भारतवासियों के लाभ के लिए नहीं जीता। में जानता हूँ कि मिशनरियों की सभाओं में कहा जाता है कि हमने भारत को भारतवासियों का स्तर उँचा करने के लिए जीता है। यह सफेद झूठ है। हमने भारत को तलवार से जीता है और तलवार से ही उसे अपने कब्जे में बनाए रखेंगे। हम उस पर इसलिए आधिपत्य बनाए रख रहे हैं कि वह ब्रिटिश माल की निकासी का सर्वोत्तम मार्ग है।''

सामाजिक व धर्मसुधार–आंदोलन–राजा राममोहनराय द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज मुख्य रूप से समाजसुधार के क्षेत्र में सक्रिय रहा। इसी तरह की कई और संस्थाएँ थीं, जैसे प्रार्थना समाज, सोशल रिफॉर्म कॉन्फरेंस इत्यादि। उधर आर्य समाज जैसी संस्थाएँ थीं, जिन्होंने अपने सुधार–कार्य में धर्म की महत्ता पर बल दिया। ''वेद शास्त्र सर्वोपरि व अकाट्य है'', ऐसा उनका अटूट विश्वास था। इन संस्थाओं ने लोगों में विश्वास और गौरव पैदा करने की कोशिश की। भारतवासियों को भारत के सुनहरे अतीत की याद दिलाकर ललकारना और गौरवान्वित करना इनका उद्देश्य था। निश्चित ही इस उभरते हुए आत्मबल व विश्वास ने राष्ट्रीयता को जगाने में सहायता दी।

अँग्रेजी शिक्षा की भूमिका–यह ठीक है कि उनके प्रभाव को गौण नहीं माना जा सकता किंतु साथ ही लोकतांत्रिक विकास का उन्हें पूरा श्रेय नहीं दिया जा सकता। ब्रिटिश शासकों ने भारत में अँग्रेजी शिक्षा के प्रचार पर इसलिए जोर नहीं दिया था कि इनसे शिक्षित होकर भारतीय अँग्रेजों के विरूद्ध आंदोलन शुरु कर दें, या अँग्रेज पढ़ा–लिखाकर शासन की बागडोर भारतवासियों के हाथ में सौंप दी जाए। मेंकाले के विचार इस कथन कीपुष्टि करते हैं। उनके शब्दों में,''......भारत के पास कभी एक स्वतंत्र सरकार नहीं हो सकती लेकिन उसके पास दूसरे दर्जे की सर्वोत्तम चीज अर्थात एक दृढ़ और निष्पक्ष तानाशाही हो सकती है।[3] निश्चय ही जब मेंकाले ने भारत में अँग्रेजी शिक्षा के प्रसार की जिम्मेंदारी सँभाली थीं, तब उसका उद्देश्य राष्ट्रीय जागरण का विकास करना नहीं वरन् उसे जड़ से उखाड़ फेंकना था। अँग्रेजी शिंक्षा के प्रचार का एकमात्र उद्देश्य था – भारत में व्यापारिक कंपनियों और साथ ही ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन–व्यवस्था के लिए क्लर्को को तैयार करना। वास्तव में उनकी इच्छा थी, पाश्चात्य शिक्षा व विचारों के प्रभाव से ऐसे भारतीय पैदा करना जो बौद्धिक दृष्टि से गुलाम हों । भारतवासियों को वाल्टेयर, रूसो मेंजिनी आदि के विचारों को पढ़ने का मौका मिला। निश्चय ही अँग्रेजी पढ़ने–समझने वाले लोगों पर इन विचारों का प्रभाव पड़ा और उनमें जनवादी एवं राष्ट्रवादी भावनाएँ जागृत हुईं।

सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन–इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि अँग्रेजों ने किस प्रकार भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर नियोजित ढंग से हमला किया। ऐतिहासिक साक्ष्य हैं कि समय–समय पर यहाँ विभिन्न राजनीतिक परिवर्तन होते रहे हैं, शासक आते–जाते रहे हैं, परंतु भारत की सामाजिक व्यवस्था में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं आया, उसकी स्थिति लगभग एक–जैसी ही बनी रही। अँग्रेजों के आगमन के विषय में यह बात उल्लेखनीय है कि उनसे पहले जिन जातियों ने भारत पर शासन किया था, वे खुद सामंतवादी व्यवस्था की

* प्राध्यापक इतिहास, शासकीय कला–वाणिज्य महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)
** प्राध्यापक इतिहास, शासकीय एम.के.बी. कन्या स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

संतान थीं। अतः उनके आगमन से यहाँ की सामाजिक व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं आया बल्कि उन्होंने इसी सामाजिक व्यवस्था को अपने शासन की आधार–शिला बनाया था।

आर्थिक कारण–रजनी पामदत्त ने लिखा है ''भारत का आर्थिक ढांचा भी 1813 के बाद ही निश्चित तौर पर उस समय टूटा जब इंग्लैंड के औद्योगिक सामान ने भारतीय बाजार पर घावा बोल दिया।''[4] भारत के आर्थिक ढांचे के टूटने का प्रभाव 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध पर क्या पड़ा इसका विवरण मार्क्स ने ठोस तत्वों के साथ प्रस्तुत किया है। कार्ल मार्क्स ने लिखा है '' 1818 से 1836 के मध्य ग्रेट ब्रिटेन ने भारत को धागे का जो निर्यात किया उसकी वृद्धि का अनुपात 1 और 5200 का था। 1824 में ब्रिटेन ने भारत को मुश्किल से 60 लाख गज मलमल भेजा था परन्तु 1837 में इसने 6 करोड़ 40 लाख गज से भी अधिक मलमल का भारत को निर्यात किया लेकिन इसके साथ ही ढाका की आबादी 1 लाख 50 हजार से घटकर 1 लाख 20 हजार हो गई। इसका सबसे बुरा परिणाम उन नगरों का पतन था जो अपने कपडों के लिए सुविख्यात थे। ब्रिटिश भाप और विज्ञान ने समूचे हिन्दुस्तान में कृषि उद्योग की एकता को जड़ से उखाड़ फेका।'' [5] कार्ल मार्क्स ने आगे लिखा है कि '' सूती कपड़ों के निर्माण के लिए ब्रिटेन ने जो प्रणाली संगठित की उसका भारत पर बहुत गंभीर असर पड़ा। 1834–35 में गवर्नर जनरल ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि इनका दुख दर्द व्यापार के समूचे इतिहास में अतुल्नीय है। कपड़ा बुनकरों की अस्थियों से भारत की धरती सफेद हो गई है।'' [6]

रेल–पथ का निर्माण–लार्ड डलहौजी ने रेल–सेवा की आवश्यकता और महत्त्व के विषय में लिखा है कि ''व्यापार की जितनी ही सुविधा दी गई है उतनी ही बड़ी मात्रा में भारत के तमाम बाजारों में इंग्लैड के सामानों की माँग बढ़ी है दुनिया के इस हिस्से में हमारे लिए नए–नए बाजार तैयार हो रहे है और हमारे माल की जो कीमत उन बाजारों में निर्धारित हो रही है उनका अनुमान चतुर से चतुर दूरदर्शी व्यक्ति भी नहीं लगा सकता।''[7] लार्ड डलहौजी का संकेत रेल यातायात से व्यापार में होने वाले लाभ की ओर है और यह सच है कि रेल–सेवा उपलब्ध कराने का एकमात्र उद्देश्य यह था कि भारत के कोन–कोने तक यूरोपीय माल को पहुँचाया जा सके। साथ ही, दूसरा लाभ उन्हें यह था कि भारत के दूर–दराज इलाकों से भी कच्चे माल को बंदरगाह तक आसानी से पहुँचाया जा सकता था। जहाँ से उसे ब्रिटेन के कारखानों की जरूरतें पूरी करने के लिए भेजा जाता। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रेल–सेवा का विकास अँग्रेज शासकों को और मजबूत बनाने के लिए किया गया था। उद्योग–धंधों के अलावा रेल–सेवा का विकास विशेषकर इसलिए भी महत्त्वपूर्ण था कि इसकी सहायता से सेना को ऐसे सुदूर प्रांतों में आसानी से भेजा जा सकता था जहाँ विद्रोह की संभावनाएँ उत्पन्न होतीं। हेरल्ड लास्कि ने लिखा है, ''यह कोई आकस्मिक घटना नहीं कि उन्नीसवीं सदी, यातायात के आधुनिक साधनों की सदी के साथ–साथ राष्ट्रीयता के उदय की भी सदी थी। यह सच है कि अँग्रेजों और फ्रांसीसियों जैसे लोगों ने राष्ट्र का रूप अठारहवीं सदी में धारण किया, फिर भी सामाजिक और सांस्कृतिक अर्थ में राष्ट्र के रूप में उनका पूर्ण विकास उन्नीसवीं सदी के दौरान ही हुआ। इसी सदी में आविष्कृत यातायात के आधुनिक साधनों ने उन्हें आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से राष्ट्रों के रूप में मजबूत बनाने में बड़ी सहायता दी।''[8]

संपूर्ण भारत में समान प्रशासन–अँग्रेजी शासन ने भारत के संपूर्ण भौगोलिक क्षेत्र को एक ही शासन के अधीन ला दिया। उसने पूरे देश पर एक जैसा प्रशासन और कानून लागू किया जिससे देश की एकता को बढ़ावा मिला। संचार व यातायात के आधुनिक माध्यमों, जैसे तार, रेल–सेवा की व्यवस्था, सड़कों का विकास और मोटर परिवहन की व्यवस्था आदि से भी देश की एकता को बढ़ावा मिला। गाँवों की आर्थिक आत्म–निर्भरता के टूटने और भीतरी व्यापार के विकास से भी समन्वित भारतीय अर्थव्यवस्था के उभार की परिस्थितियाँ पैदा हुई। धीरे–धीरे भारतवासियों का आर्थिक भाग्य एक–दूसरे से जुड़ता गया। इसी दौर में दो वर्गो का जन्म हुआ– पूँजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग। इनका विशेष रूप से उल्लेख इसलिए जरूरी है कि कई कारणों से ये वर्ग, जाति, धर्म और क्षेत्र के परंपरागत विभाजनों से उपर उठे हुए थे। इस सबका परिणाम यह हुआ कि साम्राज्यवाद–विरोधी संघर्ष के इस दौर में एकता की जिस भावना ने जन्म लिया उससे भारतवासियों में भावनात्मक एकता पैदा हुई और इस एकता की वजह से राष्ट्रीय दृष्टिकोण का जन्म हुआ।

प्रेस का योगदान–राष्ट्रीय जागरण में भारतीय प्रेस की भूमिका भी सराहनीय है। भारतीय प्रेस ने प्रारंभ से ही सरकार के प्रति आलोचनात्मक रूख अपनाया। इस बढ़ती हुई आलोचना को रोकने के लिए सरकार ने कई ऐसे कानून बनाए जिनका उद्देश्य इनकी स्वतंत्रता पर अंकुश लगाना और इन्हें अपने काबू में रखना था। यह उल्लेखनीय है कि शुरु के उन दिनों में जब राष्ट्रीय आंदोलन को अग्रसर करने के लिए एक अखिल भारतीय मंच की आवश्यकता थी, भारतीय प्रेस ने इस कमी को पूरा किया था। पढ़े–लिखे भारतवासियों में राष्ट्रीयता पैदा करने में प्रेस ने महत्तवपूर्ण योग दिया। भारत के राजनीतिक जीवन पर अखबारों और पत्रिकाओं की गहरी छाप पड़ी। इनमें इंडियन मिरर, बंबई समाचार, हिंदु पेट्रियट, अमृत बाजार पत्रिका, दि हिंदू, दि बंगाली, दि पंजाबी इत्यादि अखबारों के नाम उल्लेखनीय है। 1878 तक भारत के पुनर्जागरण के विभिन्न लक्षण भारतीय भाषाओं के राष्ट्रीय साहित्य में देखे जा सकते थे। साथ ही प्रेस आंदोलन को आगे बढ़ाने का प्रबल अस्त्र भी था। भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850–1884), बंकिम चंद चटर्जी, रवींद्रनाथ टैगोर जैसे रचयिताओं ने राष्ट्रीयता के उदय में अपनी रचनाओं से लोगों को प्रेरित किया। मुनरो ने लिखा है, '' एक स्वतंत्र प्रेस समाचार पत्र तथा विदेशी राज एक दूसरे कि विरूद्ध हैं और दोनों एकसाथ नहीं चल सकते।'' [9]

जैसे–जैसे भारत में विदेशी शासकों की जड़ें मजबूत होती गईं, वैसे–वैसे जनता में असंतोष और आक्रोश भी बढ़ता गया। इस असंतोष के शिकार न केवल आम नागरिक थे वरन् सेना में भर्ती भारतीय सैनिक भी इससे अछूते नहीं रह पाए। नागरिक विद्रोहों की कड़ी बंगाल और बिहार से शुरु होती है। खासकर इन प्रांतों में राजस्व की वसूली में तेजी, ईस्ट इंडिया कंपनी और उसके मुलाजिमों द्वारा कारीगरों के शोषण और पुराने

जमींदारों की समाप्ति ने परिस्थिति को विस्फोटक बना दिया था। प्रायः हर जिले व सूबे में जन–विद्रोह शुरु हो गए। ''ये विद्रोह किसानों, जमीदारों और छोटे सरदारों के आपस के संबंधों और वफादारी पर आधारित थे। वे सर्वथा स्थानिक और अपनी–अपनी तरह के थे। उनका नेतृत्व अनिवार्यतः उपयोग करना पड़ा लेकिन इसके बावजूद उन्होंने ब्रिटिश शासन के सामने कोई वास्तविक चुनौती नहीं रखी। फिर भी इन विद्रोहों की एक बड़ी देन यह है कि इन्होंने विदेशी शासन के विरूद्ध संघर्ष करने की मूल्यवान् स्थानीय परंपराएँ स्थापित कीं।''[10] परंपरागत विद्रोहों की परिणति 1857 के विद्रोह में हुई जिसमें किसानों, मजदूरों और सैनिकों ने बड़ी संख्या में भाग लिया। अँग्रेजी शासन को 1857 के विद्रोह ने सबसे बड़ी चुनौती दी थी। 1857 तक एक जनव्यापी विद्रोह की परिस्थितियां पैदा हो चुकी थीं। मेंरठ में चर्बी लगे कारतूसों ने सिपाहियों की धार्मिक भावनाओं को ललकारा जिससे विद्रोह की चिगारियाँ भड़क उठीं। 1857 का विद्रोह मेंरठ से शुरु होकर उत्तर प्रदेश और बिहार तक फैल गया। लाखों लोग लड़ते–लड़ते शहीद हो गए। इस विद्रोह की शक्ति का एक महत्तवपूर्ण पक्ष हिंदु–मुसलमान एकता थी।

कृषक विद्रोह—सर्वविदित है कि अँग्रेजी शासन, शोषण के लिए ही देश पर अपना आधिपत्य कायम किए हुए था। इस शोषण का विशेष आघात किसानों को ही सहना पड़ता था, परंतु उन्होंने विदेशी शोषण का डटकर मुकाबला किया। जमींदारों और छोटे सरदारों के नेतृत्व में होने वाले विद्रोहों के पीछे भी किसान ही होते थे। ''किसान–विद्रोह का एक दूसरा पक्ष भी था–उनका धार्मिक स्वरूप। वे धार्मिक और शुद्धि के आंदोलनों के रूप में शुरु हुए थे।''[11] परंतु शीघ्र ही धर्म का पक्ष महत्त्वपूर्ण नहीं रह पाया। आपसी असंतोष ही संघर्ष का आधार था। किसानों के विद्रोह में 1859–60 का 'नील आंदोलन' उल्लेखनीय है। बंगाल में हुए इस विद्रोह का सीधा टकराव नील बागानों के अँग्रेज मालिकों के साथ था। इस अवसर पर बंगाल का शिक्षित वर्ग किसानों का खुला समर्थन करता रहा। 1866–68 में दरभंगा और चंपारण में नील–उत्पादक किसानों ने बड़े स्तर पर विद्रोह किया। जमीन–संबंधी एक बड़ा उपद्रव 1875 में पूना और अहमदनगर जिलों में महाराष्ट्र में हुआ। अतः स्पष्ट है कि धीरे–धीरे समाज के सभी वर्गों में असंतोष फैलता जा रहा था।

राजनीतिक संस्थाओं की भूमिका—भारत में पहली राजनीतिक संस्था 1838 में कलकत्ता में ''लैंड–होल्डर्स सोसायटी'' के नाम से स्थापित की गई परंतु इसका उद्देश्य मात्र जमीदारों के हितों की रक्षा करना था। 1843 में 'बंगाल ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन' का गठन व्यापक राजनीतिक उद्देश्यों से किया गया। देश के कई शहरों और कस्बों में भी ऐसी संस्थाएं स्थापित की गईं। इनकी मांगें मुख्य रूप से प्रशासनिक सुधारों से जुड़ी हुई थीं। 1857 के विद्रोह की असफलता से यह स्पष्ट हो गया था कि उच्च वर्गों के नेतृत्व में चलने वाला प्रतिरोध सफल नहीं हो सकता, इसलिए उपनिवेशवाद का विरोध नवीन पद्धति से करना होगा। साथ ही 1857 के विद्रोह के बाद अँग्रेजी सरकार और नीतियों की प्रकृति में भी बड़ा परिवर्तन आया और वह अधिकाधिक प्रतिक्रियावादी होता गया। 1866 में दादाभाई नौरोजी ने भारतीय समस्याओं पर विचार करने के लिए तथा ब्रिटिश जनमत को प्रभावित करने के लिए लंदन में 'ईस्ट इंडिया एसोसिएशन' की स्थापना की। भारत में इसकी कई शाखाएँ खोली गई। 1870–80 के बीच लॉर्ड लिटन के कार्यकाल में भारत पर घोर अत्याचार किया गया और अँग्रेजी सरकार अत्यधिक विघटनकारी नीतियाँ अपनाकर शोषण करने लगी जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव राष्ट्रवादी आंदोलन पर हुआ जो शीघ्र ही तीव्र होने लगा।

इलबर्ट–बिल—सन् 1880 में जब लॉर्ड रिपन ने कार्यभार संभाला तो कई प्रगतिशील कदम उठाए गए जिनका एक उदाहरण था 'इलबर्ट–बिल'। 1873 की दंड संहिता के अनुसार अँग्रेजों और भारतीयों के खिलाफ कानूनी कार्यवाही करने में ऐसा नियम बनाया गया था कि अँग्रेजों का मुकद्दमा सिर्फ अँग्रेज जजों के द्वारा ही सुना जा सकता है। 1883 में इलबर्ट–बिल तैयार किया गया जिसका उद्देश्य अँग्रेजों और भारतीयों को कानून की नजर में समान बनाना था। इस प्रकार इलबर्ट–बिल–विवाद ने भारतीयों को अँग्रेजों के वास्तविक उद्देश्य से अवगत कराया। उपरोक्त समस्त कार्य अँग्रेजी शासन के शोषण और औपनिवेशिक प्रवृत्ति के जीते–जागते उदाहरण हैं। संपूर्ण भारत में इन कृत्यों के विरोध में आंदोलन हुए। स्वदेशी का नारा बुलंद किया गया जिसका उद्देश्य था भारतीय व्यापार और उद्योग में नवीन प्राण फूँकना और उसे अँग्रेज उत्पादकों के हमले से बचाना, इस तरह असंतोष व्यापक रूप लेता गया। 1876 में सुरेंद्र नाथ बनर्जी के नेतृत्व में 'इंडियन एसोसिएशन' की स्थापना की गई। उन्होंने पूरे देश में घूम–धूमकर 'भारतीय सिविल सेवा' की परीक्षा–प्रणाली में सुधार की माँग की। व्यापक राजनीतिक आंदोलन में आम जनता को खींचने के लिए 'इंडियन एसोसिएशन' ने काश्तकारों के अधिकारों के लिए जमींदारों के विरूद्ध और चाय–बागानों के मजदूरों के अधिकारों के लिए विदेशी बाग मालिकों के विरूद्ध आवाज उठाई। 1884 में 'मद्रास महाजन सभा' बनाई गई। 1885 में फिरोजशाह मेंहता के नेतृत्व में 'बंबई प्रेसीडेंसी ऐसोसिएशन' की स्थापना की गई। इसी वर्ष राष्ट्रीय कांग्रेस का भी जन्म हुआ जिसके नेतृत्व में भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की।

सन्दर्भ–

1. स्ट्रेची जॉन : इंडिया : इट्स एडमिनिस्ट्रेशन एंड प्रोग्रेस, पृ. 5 2. उपरोक्त पृ. 28 3. पामदत्त रजनी : आज का भारत, पृ.315 4. उपरोक्त पृ. 114 5. मार्क्स कार्ल : दि ब्रिटिश रूल इन इंडिया, न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून, 30 जून 1853 6. उपरोक्त 7. पामदत्त रजनी : आज का भारत, पृ. 155 8. देसाई, ए. आर. : सोशल बैग्राउंड ऑफ इंडियन नेश्नेलिज्म, पृ. 107 9. प्रसाद ईश्वरी : हिस्ट्री ऑफ मॉर्डन इंडिया, पृ. 308 10. बिपिन चंद्र, त्रिपाठी अमलेश, डे बरूण : स्वतंत्रता संग्राम, पृ. 4 11. उपरोक्त पृ. 46